(March 2024). *वैश्वीकरण और भारतीय राष्ट्रीय राजनीति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन*
International Journal of Economic Perspectives,*18*(03) 61-69
ISSN: 1307-1637 UGC CARE GROUP II
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal

वैश्वीकरण और भारतीय राष्ट्रीय राजनीति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

पूनम दत्ता
सह–आचार्य (राजनीति विज्ञान)
राजकीय महिला महाविद्यालय, सादुलशहर

डॉ. संजीव कुमार बंसल
सह–आचार्य (एबीएसटी)
श्रीमती नर्बदा देवी बिहाणी राजकीय महाविद्यालय, नोहर

सारांश

21वीं सदी में वैश्वीकरण एक अत्यंत प्रभावशाली प्रक्रिया के रूप में उभरा है, जिसने विश्व की राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति एवं समाज के समस्त आयामों को गहराई से प्रभावित किया है। भारत, एक विकासशील लोकतांत्रिक राष्ट्र होने के नाते, वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया से अछूता नहीं रहा है। इस शोध पत्र में वैश्वीकरण के प्रभावों का विश्लेषण भारतीय राष्ट्रीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। विशेष रूप से यह अध्ययन राजनीतिक नीतियों, चुनावी प्रक्रियाओं, राजनीतिक दलों की रणनीतियों, राष्ट्रीय संप्रभुता, एवं लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा पर वैश्वीकरण के प्रभाव को रेखांकित करता है।

यह शोध वैश्वीकरण के चलते राष्ट्रीय राजनीति में उत्पन्न अवसरों और चुनौतियोंकृ जैसे कि बहुराष्ट्रीय निगमों का प्रभाव, नीति निर्माण में वैश्विक संस्थाओं की भूमिका, और जनविरोधी सुधारों की स्वीकृति–का विश्लेषण करता है। साथ ही, यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि किस प्रकार वैश्वीकरण ने भारतीय राजनीति को अधिक बाजारोन्मुखी, केंद्रीकृत और मीडिया–प्रेरित बना दिया है। अंततः यह शोध यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि वैश्वीकरण के प्रभाव को पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता, परंतु एक संतुलित और आत्मनिर्भर दृष्टिकोण के माध्यम से भारतीय राजनीति अपनी मौलिकता और लोकतांत्रिक मूल्य बचा सकती है।

मुख्य शब्दः वैश्वीकरण, भारतीय राजनीति, राष्ट्रीय संप्रभुता, लोकतंत्र, नीति निर्माण, बहुराष्ट्रीय निगम, चुनावी प्रक्रिया, राजनीतिक दल, मीडिया और राजनीति,

Submitted: 27Dec 2023, Revised: 09 Jan 2024, Accepted: 18 Feb 2024, Published: March 2024

प्रस्तावना

21वीं सदी में विश्व एक ऐसे मोड़ पर आ खड़ा हुआ है जहाँ सीमाएँ केवल भौगोलिक नहीं रह गईं, बल्कि राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में भी निरंतर पुनर्परिभाषित हो रही हैं। इस वैश्विक परिवेश में ष्वैश्वीकरणष न केवल एक आर्थिक प्रक्रिया के रूप में, बल्कि एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवर्तन के रूप में उभरा है। वैश्वीकरण ने विश्व के विभिन्न राष्ट्रों को परस्पर जोड़ते हुए एक–दूसरे पर निर्भर बना दिया है, जिसके प्रभाव से कोई भी देश, विशेषकर भारत जैसा विकासशील लोकतंत्र, अछूता नहीं रह सका है।

भारत, जो एक विशाल लोकतांत्रिक संरचना, विविध सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक जटिलताओं वाला राष्ट्र है, वैश्वीकरण की लहरों से प्रभावित होकर अपने राजनीतिक ढांचे में अनेक परिवर्तन देख चुका है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों के लागू होने के पश्चात भारतीय राजनीति ने न केवल अपने आर्थिक दृष्टिकोण में परिवर्तन किया है, बल्कि इसके कारण राजनीतिक दलों की रणनीतियाँ, नीति निर्माण की प्रक्रियाएँ, और यहां तक कि मतदाता व्यवहार भी प्रभावित हुआ है।

जहाँ एक ओर वैश्वीकरण ने भारत को वैश्विक मंच पर नई पहचान दी है, वहीं दूसरी ओर इसने अनेक प्रश्न भी खड़े किए हैंकृक्या भारत की नीतियाँ अब बहुराष्ट्रीय निगमों और वैश्विक संस्थाओं के दबाव में बन रही हैं? क्या लोकतांत्रिक निर्णयों में अब आम जनता की अपेक्षाओं की जगह विदेशी निवेशकों की प्राथमिकताओं को वरीयता दी जा रही है? क्या राष्ट्रीय संप्रभुता और आत्मनिर्भरता के आदर्श वैश्विक दबावों में पीछे छूटते जा रहे हैं?

वैश्वीकरण की कोई सुनिश्चित व्यवस्था नहीं की जा सकती। प्रायः इसे एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है, जिसमें विश्व के किसी एक भाग में घटित घटनाओं, निर्णयों अथवा क्रियाओं का विश्व के अन्य भागों के निवासियों अथवा समुदायों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इसमें अनेक ऐसे विषय सम्मिलित हो जाते हैं, जिसका सम्बन्ध अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर राजनीति तथा आर्थिक व्यवस्था से हो। इनका सम्बन्ध बहुध्रुवीय विश्व (डनसजप.चवसंत ूवतसक) उत्तरी व दक्षिणी देशों की आपसी सम्बन्ध विश्व स्तर पर गरीबी, बेरोजगारी अथवा आर्थिक विषमताओं से भी हो सकता है। इसका तात्पर्य विभिन्न सरकारों के बीच आपसी सम्बन्धों, राज्य व बाजार (डंतामज) के आपसी सम्बन्धों अथवा राज्य व नागरिक समाज के बीच सम्बन्धों से भी हो सकता है। इसी प्रकार क्षेत्रीयकरण के भी कई अर्थ हो सकते हैं। कानूनी दृष्टिकोण से क्षेत्रीयकरण से तात्पर्य क्षेत्रीय स्तर पर नये संगठन से लिया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में क्षेत्रीय स्तर पर फ्रीट्रेड (छ।ज्ज।ए‶ ।च्ज।ए ।च्ब्ए ‶।ज्ज।) को बढ़ावा मिला। क्षेत्रीयकरण से तात्पर्य क्षेत्रीय स्तर पर आपसी व्यापार से भी लिया जाता है। इस प्रकार के सहयोग का अर्थ क्षेत्रीय व्यापार को बढ़ावा देना है। इससे यातायात खर्च में

Submitted: 27Dec 2023, Revised: 09 Jan 2024, Accepted: 18 Feb 2024, Published: March 2024

कटौती की जा सकती है तथा अपने पड़ोसी देशों में उपलब्ध सुविधाओं का बेहतर लाभ उठाया जा सकता है। क्षेत्रीयकरण के प्रति खुले प्रयासों तथा व्यापारिक समझौतों के प्रति विकासशील देशों में अधिक उदार दृष्टिकोण दिखाई देता है। वैश्वीकरण के हितों पर कम ध्यान जाता है।

सामान्य तौर पर वैश्वीकरण तथा प्रान्तीयकरण के प्रति दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। प्रथम प्रवृत्ति के अनुसार उत्तरी विकसित देशों की तकनीक व विकासशील देशों से सस्ती श्रम शक्ति के बीच तादात्मय स्थापित किया जा सकता है, जिससे दोनों देशों के निवासियों को लाभ हो सकता है। अन्तरराष्ट्रीय व्यापार की नई नीतियों के अनुसार दो देशों, कम्पनियों अथवा व्यक्तियों के बीच पूर्ण प्रतियोगिता का होना जरूरी नहीं। इनमें आपसी सहयोग भी सम्भव है। इस प्रवृत्ति के अनुसार विकासशील देश भी आर्थिक अन्तरराष्ट्रीयकरण का लाभ उठा सकते हैं। दूसरी प्रवृत्ति के अनुसार अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपर्याप्त व अनुचित प्रतियोगिता के कारण ही विकासशील देशों में आर्थिक विकास की गति कम रही है।

वैश्वीकरण एवं क्षेत्रीयकरण की प्रवृत्तियों के फलस्वरूप वितरण को कम महत्त्व दिया जाता है तथा उत्पादन को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसमें आर्थिक कार्यकुशलता को अधिक महत्त्व दिया जाता है, आर्थिक न्याय को कम। इन नीतियों के फलस्वरूप क्षेत्रीय एवं आर्थिक विषमताओं को भी अनुपयुक्त बढ़ावा मिला है।

वैश्विक ढाँचों पर भरोसा करने के बजाय दुनिया के देश अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिये तेजी से क्षेत्रीय या द्विपक्षीय व्यापार समझौतों की ओर रुख कर रहे हैं। प्रवृत्ति में इस परिवर्तन के लिये उभरते आर्थिक राष्ट्रवाद (म्बवदवउपब छंजपवदंसपेउ), बढ़ते भू–राजनीतिक तनाव और अपने वादों की पूर्ति में विभिन्न बहुपक्षीय संस्थानों की विफलता जैसे कारकों को ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है। वैश्वीकरण के इस खंडित रूप का दुनिया भर के देशों के लिये अवसरों और चुनौतियों दोनों ही विषयों में अंतरराष्ट्रीय व्यापार और सहयोग के भविष्य के लिये गहरा प्रभाव पड़ा है।

जिसे आज ‘वैश्वीकरण’ के रूप में जाना जाता है, उसे शीत युद्ध की समाप्ति और वर्ष 1991 में सोवियत संघ के विघटन के साथ भारत में मान्यता प्राप्त हुई। दो प्रणालियों– लोकतंत्र और पूंजीवाद की एक शाखा के रूप में वैश्वीकरण मुक्त व्यापार (थ्तमम ज्तंकम) पर बल रखता है और इसने पूंजी एवं श्रम के अंतर–देष गमन की वृद्धि में योगदान दिया है। राजनीतिक अर्थ में, यह अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से बढ़ते वैष्विक शासन या राष्ट्रीय नीतियों के बढ़ते संरेखण को संदर्भित करता है।

वैश्वीकरण के लिए प्रेरक कारक

वैश्वीकरण की प्रक्रिया कोई आकस्मिक या स्वतः उत्पन्न होने वाली घटना नहीं है, बल्कि इसके पीछे अनेक सशक्त प्रेरक कारक कार्यरत हैं जिन्होंने इस अवधारणा को विश्वव्यापी रूप देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सबसे प्रमुख कारक है प्रौद्योगिकी में तीव्र प्रगति, विशेष रूप से सूचना एवं संचार तकनीक (प्ब्ज्), इंटरनेट, उपग्रह संचार और मोबाइल टेक्नोलॉजी का विकास। इन तकनीकी माध्यमों ने देशों के बीच संवाद, जानकारी का आदान–प्रदान और व्यापार को अत्यंत सरल, तीव्र और सुलभ बना दिया है। इसके साथ ही परिवहन के साधनों में क्रांतिकारी सुधारकृजैसे कि उच्च गति की रेलगाड़ियाँ, वायु परिवहन, कंटेनर शिपिंग–ने वस्तुओं और व्यक्तियों की अंतर्राष्ट्रीय आवाजाही को बढ़ावा दिया है।

उदारीकरण, निजीकरण और मुक्त व्यापार की नीतियाँ भी वैश्वीकरण को गति देने वाले महत्त्वपूर्ण कारक रहे हैं। विश्व व्यापार संगठन (ॅज्व्), अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (प्डथ्) और विश्व बैंक जैसी संस्थाओं ने पूंजी, वस्तुओं और सेवाओं की वैश्विक आवाजाही के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया है। इसके साथ–साथ बहुराष्ट्रीय कंपनियों (डछब्े) की भूमिका भी अत्यंत निर्णायक रही है, जिन्होंने विभिन्न देशों में अपने उत्पादन और विपणन तंत्र का विस्तार कर वैश्विक बाजार का सृजन किया है।

राजनीतिक इच्छाशक्ति और वैश्विक कूटनीतिक संबंधों में मजबूती भी ऐसे कारकों में आती है, जिन्होंने देशों को पारस्परिक सहयोग के लिए प्रेरित किया है। अंतरराष्ट्रीय संगठन, क्षेत्रीय आर्थिक समझौते और रणनीतिक साझेदारियाँ देशों के बीच एक नया विश्वास निर्माण करती हैं। अंततः, उपभोक्तावाद और वैश्विक संस्कृति की स्वीकृति ने भी वैश्वीकरण की प्रक्रिया को सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य बना दिया है, जिससे दुनिया एक ष्लोबल विलेजष की ओर बढ़ चली है।

इस प्रकार, वैश्वीकरण की गति को तेज करने वाले यह सभी प्रेरक कारक परस्पर जुड़े हुए हैं और विश्व व्यवस्था को एक नए ढांचे में ढाल रहे हैं, जिसका प्रभाव प्रत्येक राष्ट्र की आंतरिक राजनीति, विशेषकर भारत जैसे लोकतंत्र, पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

भारत में वैश्वीकरण और राज्य राजनीति पर प्रभाव

भारत में 1991 के आर्थिक सुधारों के पश्चात वैश्वीकरण ने न केवल राष्ट्रीय स्तर पर, बल्कि राज्य स्तर की राजनीति पर भी गहरा प्रभाव डाला है। राज्य सरकारें, जो पहले मुख्यतः केन्द्रीय अनुदानों और योजनाओं पर निर्भर होती थीं, अब अंतरराष्ट्रीय निवेश आकर्षित करने के लिए प्रतिस्पर्धी बन गई हैं। इस प्रतिस्पर्धा ने उन्हें अपनी नीतियों, कर ढाँचे, औद्योगिक अनुकूलता और आधारभूत संरचना को वैश्विक मानकों के अनुसार ढालने के लिए प्रेरित किया है। विशेष आर्थिक क्षेत्र (ैम्र्), निवेश सम्मेलन (प्दअमेजवते ैनउउपजे) और विदेशी निवेश के प्रति खुले रुख ने राज्य स्तर की राजनीतिक प्राथमिकताओं में भारी बदलाव लाया है।

Submitted: 27Dec 2023, Revised: 09 Jan 2024, Accepted: 18 Feb 2024, Published: March 2024

राज्य सरकारों ने अब आर्थिक विकास को अपनी राजनीतिक वैधता का आधार बनाना शुरू कर दिया है। जैसे कि गुजरात मॉडल, महाराष्ट्र का औद्योगिक बेल्ट, आंध्र प्रदेश और तेलंगाना के [illegible] पार्क, तमिलनाडु का ऑटोमोबाइल हब, आदि राज्यों की पहचान अब सिर्फ सांस्कृतिक या भौगोलिक नहीं रही, बल्कि वे वैश्विक व्यापार मानचित्र पर अपनी आर्थिक विशेषताओं के लिए पहचाने जा रहे हैं। इससे क्षेत्रीय पार्टियों की राजनीति में भी परिवर्तन आया है—अब वे सिर्फ जातीय या भाषाई मुद्दों तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि आर्थिक सुधारों, विदेशी निवेश, रोजगार सृजन और बुनियादी ढांचे के विकास को लेकर भी अपनी नीतियों को उन्नत बना रही हैं।

हालांकि, वैश्वीकरण का यह प्रभाव सकारात्मक के साथ–साथ कई बार चुनौतिपूर्ण भी रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों और विदेशी पूंजी पर अत्यधिक निर्भरता से कुछ राज्यों की नीतियाँ जनहित से हटकर बाजार हितों की ओर झुक गई हैं। भूमि अधिग्रहण, श्रम कानूनों में ढील, और सामाजिक योजनाओं में कटौती जैसे मुद्दों पर राज्य सरकारों को विरोधों का सामना भी करना पड़ा है। साथ ही, अमीर और गरीब राज्यों के बीच असमानता और अधिक गहराई से उभरने लगी है, क्योंकि सभी राज्य वैश्वीकरण की दौड़ में एक समान भाग नहीं ले पा रहे।

वैश्वीकरण के इस दौर में यदि हम राज्यों की राजनीति के परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो प्रथम तथ्य यह उभरकर आता है कि अधिकांश राज्यों में दो क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के बीच सत्ता को लेकर सीधा संघर्ष हो रहा है। देश के एक बहुत बड़े हिस्से में राष्ट्रीय राजनीतिक दलों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। कई प्रदेशों में वे सत्ता की दौड़ से बाहर है अथवा क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के साथ सत्ता में साझेदार होने को बाध्य है। इस स्थिति के कारणों का विष्लेषण करें तो प्रकट होता है कि राष्ट्रीय राजनीतिक दलों ने ‘ग्लोबल’ हितों की तुलना में कही न कहीं ‘लोकल’ हितों की अवहेलना की, जिससे स्थानीय जनता में उनके प्रति विश्वास नहीं रहा। इससे क्षेत्रीय और प्रदेशों की राजनीति में एक निर्वात पैदा हुआ जिसे क्षेत्रीय राजनीतिक दलों ने क्षेत्रीय हितों के नाम पर भरा। स्थानीय संसाधनों के महंगे हो जाने से उनके अपने हाथ से निकल जाने के भय ने जनता को उन लोगों को चुनने की ओर प्रेरित किया, जो उनके स्थानीय संसाधनों और हितों की सुरक्षा कर सके। यहां यह देखना भी दिलचस्प होगा कि आर्थिक सुधारों की जो रणनीति केन्द्र की सरकारों ने शुरू की, उसे क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का भी निरन्तर समर्थन मिलता रहा है। गठबंधन सरकारों में सम्मिलित क्षेत्रीय दल इन नए आर्थिक सुधारों पर अपनी मोहर लगाते रहे हैं। संभवतः इसका कारण यह रहा है कि एक तो वे यह विचार रखते हैं कि विदेशी पूंजी निवेश उनके स्वयं के राज्यों में होगा तो वे ज्यादा विकास कर पायेंगे। दूसरा, क्षेत्रीय पूंजीपति भी विदेशी पूंजी के साथ सांठ–गांठ रखने की आकांक्षा रखते हैं। किंतु इन सुधारों का जो असर सामने आने लगा है अब उससे ये दल इन सुधारों से कतराने लगे हैं और आज खुदरा क्षेत्र में एफडीआई का विरोध कर रहे हैं।

Submitted: 27Dec 2023, Revised: 09 Jan 2024, Accepted: 18 Feb 2024, Published: March 2024

1991 में वैश्वीकरण की प्रक्रिया को आधार बनाकर भारतीय शासक वर्ग ने विकास की जो नई रणनीतियां बनाई, उसने भारत की राजनीति में नए तनावों के संघर्षों को जन्म दिया है। अस्सी और नब्बे के दशक में आर्थिक सुधारों की नवउदारवादी नीतियों ने देश के गरीब, उत्पीडित व दलित तबके को हाशिये पर धकेल दिया तथा असंतुलित विकास के कारण राजनैतिक अस्थिरता को जन्म दिया। ‘ग्लोबल’ के फेर में ‘लोकल’ हितों की अनदेखी ने राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के वर्चस्व को समाप्त कर दिया और क्षेत्रीय दलों का उभार हुआ। यह देश के संघीय ढांचे के लिए तो शुभ संकेत है, किंतु इससे संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था कमजोर हुई है। यही नहीं, क्षेत्रीय हितों के अतिरिक्त उभार ने राष्ट्रीय एकीकरण को चुनौती प्रस्तुत की है। सामाजिक, आर्थिक संघटन की नवीन वैश्वीकृत प्रणाली के दबावों से जहां एक ओर क्षेत्रीय अस्मिताओं को लेकर आन्दोलन हो रहे हैं, वहीं दूसरी ओर भाषा, जाति और सम्प्रदाय को लेकर तनाव मुखर हुए है। नव उदार अर्थव्यवस्था के दौर में पूरी समाज व्यवस्था एक बुनियादी परिवर्तन का सामना कर रही है, जिसमें व्यक्ति और समूह के स्थानिक हित महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। सत्ता में हिस्सेदारी के लिए विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक समूह के बीच खुली होड़ जारी है।

इस प्रकार, वैश्वीकरण ने भारत की राज्य राजनीति को एक नई दिशा दी है, जहाँ अब स्थानीय और वैश्विक हितों के बीच संतुलन साधना एक बड़ी चुनौती बन गया है। राज्य सरकारों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वे वैश्विक अवसरों का लाभ उठाते हुए अपनी नीतियों को लोकहितकारी बनाए रखें, ताकि लोकतंत्र और समावेशी विकास दोनों साथ चल सकें।

निष्कर्ष

वैश्वीकरण व आर्थिक अन्तरराष्ट्रीयकरण के इस दौर में प्रजातान्त्रिक मूल्यों, संस्थाओं व प्रक्रियाओं को मजबूत बनाए रख पाना दुष्कर साबित हो रहा है। अतः पश्चिमी देशों व अन्तरराष्ट्रीय सहायता संस्थाओं को चाहिए कि विकासशील देशों को आर्थिक मदद देते समय आर्थिक उदारीकरण व निजीकरण अथवा राजनीतिक प्रजातन्त्र (च्वसपजपबंस क्मउवबतंबल) को आर्थिक सहायता की पूर्व शर्त के रूप में न देखे। आर्थिक सुधारों व राजनीतिक प्रजातन्त्र को ऊपर से नहीं लादा जा सकता। आर्थिक मदद के लालच में कुछ विकासशील देश यदि इन्हें अपना भी लें तो भी इनकी सफलता की कोई गारण्टी नहीं है। इस प्रकार के सुधार क्रमिक व स्वाभाविक होने चाहिए। समय, आवश्यकता व परिस्थितियों के अनुकूल, विकासशील देशों के नेता राजनीतिक प्रजातन्त्र अथवा आर्थिक सुधारों में से किसी एक को वरीयता दे सकते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण हमें इस निष्कर्ष तक पहुंचने में मदद करता है कि वैष्वीकरण के दौर में राज्य की कल्याणकारी भूमिका समाप्त हो गई है और वह कॉर्पोरेट पूंजी का विस्तारक एजेंट बन गया है। इससे आम नागरिक विकास की प्रकिया में भागीदार होने की बजाय हाषिए पर चला

गया है। भारत में भी राज्य इसी भूमिका का निर्वह्न कर रहा है और वह 'कल्याणकारक' के स्थान पर फेसिलिटेटर या सुविधा उपलब्धकर्ता में तब्दील हो गया है, जिसका उद्देश्य पूंजीपतियों को अनुकुल सुविधाएं उपलब्ध करवाना रह गया है। राज्य द्वारा अपनी कल्याणकारी भूमिका को तिलांजलि देने से आम नागरिक की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति असंभव हो गई तथा 'ग्लोबल' पूंजी के जोश में 'लोकल' हितों एवं मांगो को नजर अंदाज किया गया। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने स्थानीय विकास को नजर अंदाज किया। इसका राजनीतिक परिणाम यह निकला कि राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को अनेक प्रांतो की जनता ने अस्वीकार करना शुरू कर दिया। नतीजतन राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों का प्रभुत्व कायम हुआ और गठबंधन सरकारों का उदय हुआ, जो कमोपेश अस्थिर सरकारें रही है।

उपर्युक्त समस्त विश्लेषण के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि भारत में राज्य ने जब–जब अपनी समाजवादी और कल्याणकारी भूमिका को तिलांजलि दी है, तब–तब उसे संकटों का सामना करना पड़ा है। तीव्र औद्योगिकीकरण के बावजूद कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था को कहीं न कहीं विस्मृत किये जाने के कारण ही 1967 में पहली बार भारतीय अर्थव्यवस्था संकट में पड़ी और कांग्रेस का एक दलीय प्रभुत्व टूटा। 1971 में इंदिरा गांधी की समाजवादी, गरीबोन्मुख और कृषिगत विकास पर आधारित नीतियों ने पुनः कांग्रेस को खोया वर्चस्व प्रदान करवाया। किन्तु अस्सी और नब्बे के दशक में आर्थिक सुधारों की नवउदारवादी नीतियों ने क्षेत्रीय हितों को उभारने का अवसर दिया। यह देश के संघीय ढांचे के लिए तो शुभ संकेत है, किंतु इससे संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था कमजोर हुई है। वैश्वीकरण की प्रकिया के अन्तर्गत असंतुलित विकास के कारण राजनैतिक अस्थिरता का जन्म हुआ। यही नहीं, क्षेत्रीय हितों के अतिरिक्त उभार ने राष्ट्रीय एकीकरण को चुनौती प्रस्तुत की है। सामाजिक, आर्थिक संघटन की नवीन वैश्वीकृत प्रणाली के दबावों से जहां एक ओर क्षेत्रीय अस्मिताओं को लेकर आन्दोलन हो रहे हैं, वहीं दूसरी ओर भाषा, जाति और सम्प्रदाय को लेकर तनाव मुखर हुए हैं। नव उदार अर्थव्यवस्था के दौर में पूरी समाज व्यवस्था एक बुनियादी परिवर्तन का सामना कर रही है, जिसमें व्यक्ति और समूह के स्थानिक हित महत्वपूर्ण हो गये हैं। सत्ता में हिस्सेदारी के लिए विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक समूह के बीच खुली होड़ जारी है। यह देश की राजनीति के लिए गंभीर खतरे के संकेत हैं।

सुझाव

यदि समाज में सफल राजनीतिक प्रबन्धन करना है तो उसके लिए स्थिर दलीय व्यवस्था अनिवार्य है, जो वैष्वीकरण के अन्तर्गत सम्भव नहीं लगती क्योंकि यह राज्य की भूमिका को सीमित कर व्यक्तियों व समूहों के हितों को बाजार के हवाले छोड़ देता है। अतः आज इस बात की आवष्यकता है कि राज्य अपनी कल्याणकारी भूमिका में पुनः लौटे और मिश्रित अर्थव्यवस्था के उस प्रतिमान की पुर्नस्थापना हो, जिसमें बाजार बेहतर ढंग से राज्य या समाज द्वारा नियंत्रित

Submitted: 27Dec 2023, Revised: 09 Jan 2024, Accepted: 18 Feb 2024, Published: March 2024

हो तथा निजी सम्पत्ति पर व्यापक सामाजिक नियंत्रण हो। एक ऐसा कल्याणकारी राज्य आज समय की जरूरत है, जो भौतिक पूंजी के साथ–साथ सामाजिक पूंजी का भी संवर्द्धन करे तथा उच्च समृद्धि दर को समावेषी विकास में परिणत कर सके।

संदर्भ

1. देसाई, ए.आर. (1989) भारत का विकास मार्ग : मार्क्सवादी दृष्टि, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेषालय, दिल्ली विष्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. 23
2. साईनाथ, पी. (1 मार्च, 2011) कॉर्पोरेट सोषलिज्म टू जी ओरगे, द हिन्दु
3. घोष, जयन्ती एवं चन्द्रषेखर सी.पी. (2011) दि मार्केट देट फेल्ड : निओलिबरल इकॉनोमिक रिफॉर्मस इन इंडिया, लेफ्ट वर्ड बुक्स, नई दिल्ली
4. कोहली, अतुल (2009) डेमोक्रेसी एंड डवलपमेंट इन इंडिया : फ्रॉम सोषिलिज्म टू प्रो बिजनिस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पेपरबेक नई दिल्ली
5. तेन्दुलकर, सुरेष तथा भवानी, टी.ए. (2007) अंडरस्टेंडिंग रिफॉर्मसः पॉस्अ 1991 इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली
6. छब्बर, विवेक (2004) लॉक्ड इन प्लेस : स्टेट बिल्डिंग एंड लेट इंडस्ट्रीलाइजेषन इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन
7. ड्रेज, जीन और अर्मत्य सेन (2002) इंडिया : डवलपमेंट एंड पार्टिसिपेषन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली
8. मार्क्स, कार्ल, केपीटल, खंड 1, मषीन और आधुनिक उद्योग, उदृत द्वारा कृष्ण कुमार खन्ना, मार्क्स, एंगेल्स की रचनाओं में इकोलॉजी विषयक प्रसंग, शोधार्थी, अप्रेल–जून 2005
9. सिन्हा, सच्चिदानंद (2003) भूमंडलीकरण की चुनौतियां, वाणी प्रकाषन, नई दिल्ली, भूमिका
10. वर्धन, प्रणब, चेलेन्जेज फॉर ए मिनिमम सोषल डेमोक्रेसी इन इंडिया, इ.पी.डब्लयू, मार्च, 2011
11. आलम, जावी (2007) लोकतंत्र के तलबगार, अनु. अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाषन, नई दिल्ली, पृ. 73–74
12. समीर अमीन और जॉन बेलेमी फॉस्टर (2014) केपीटलिज्म इन दी एज ऑफ ग्लोबलाइजेषन : दी मैनेजमेन्ट ऑफ कन्टेमप्रेरी सोसाइटी, जेड बुक्स
13. प्रकाषित एंथेनी पी.डीकॉस्टा और अचिन चक्रवर्ती (2017) दी लैंड क्यूषचन इन इंडिया : स्टेट, डीपजेषन एंड केपीटीलिस्ट ट्रांजिषन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली

Submitted: 27Dec 2023, Revised: 09 Jan 2024, Accepted: 18 Feb 2024, Published: March 2024